तेरापंथ का राजस्थानी गद्य साहित्य

☐ **मुनि श्री दुलहराज**, युगप्रधान आचार्यश्री तुलसी के शिष्य

साहित्य की गंगा अनेक धाराओं में प्रवाहित रही है। उद्गम स्थल में धारा एक होती है परन्तु ज्यों-ज्यों वह अपने क्षेत्र को विस्तृत करती हुई आगे बढ़ती है, उसकी अनेक धाराएँ हो जाती हैं। प्रत्येक धारा अपनी एक विशेषता को लेकर प्रवाहित होती है। वह मूल से सर्वथा विभिन्न नहीं होती। प्रत्येक धारा में मूल प्रतिबिम्बित रहता है, फिर भी उसका अपना एक वैशिष्ट्य होता है ओ अन्य धाराओं में नहीं मिलता। साहित्य की दो मुख्य धाराएँ हैं—गद्य और पद्य। इनके अवान्तर भेद अनेक हो सकते हैं। गद्य साहित्य सरल और सुबोध होता है और पद्य साहित्य कठिन और दुर्बोध। यह भी अकारण नहीं है। गद्य विस्तार-रुचि का परिणाम है और पद्य संक्षेप रुचि का। विस्तार-रुचि से लिखा गया साहित्य प्रत्येक अंश की विशद व्याख्या करता हुआ आगे बढ़ता है। उसका दृष्टिकोण होता है कि मेरी बात पाठक को स्पष्ट समझ में आए। कहीं भी कोई बात निगूढ़ न रहे।

सामान्यतः गद्य साहित्य से ऐसे साहित्य का बोध होता है जो वास्तव में ध्वन्यात्मक हो, शब्दों की अभिव्यंजना किसी शाश्वत तथ्य की पुष्टि करती हो।

पद्यात्मक विधा सीमा में प्रवाहित होने वाली धारा है। उसका अपना निश्चित विधान और विज्ञान होता है। वह उनका अतिक्रमण नहीं कर सकती। यह थोड़े में बहुत कहने की विधा है। यह मर्म को छूती है, परन्तु बहुत कम व्यक्ति इसे आत्मसात् कर पाते हैं।

तेरापंथ प्राणवान् संघ है। इसका इतिहास केवल दो सौ वर्ष पुराना है। आचार्य भिक्षु इसके प्रवर्तक थे। उन्होंने विक्रम संवत् १८१७ में इसका प्रारम्भ किया। वह समय एक धार्मिक कट्टरता का समय था। स्थान-स्थान पर धार्मिक चर्चाएँ होती थीं, वाद-विवाद आयोजित किये जाते थे। एक पक्ष अपनी श्रेष्ठता और सत्यता को प्रमाणित करने के लिए तर्कों को ढूंढ़ता था। इस प्रक्रिया ने अनेक ग्रन्थों के आलोड़न-विलोड़न की ओर मुमुक्षुओं को प्रेरित किया। इससे तथ्यात्मक ज्ञान की वृद्धि के साथ-साथ तर्क-प्रतितर्क का विकास हुआ और परिणामस्वरूप विशाल साहित्य का निर्माण हो गया।

तेरापंथ गण ने अपनी इस २१५ वर्षों की कलावधि में अनेक साहित्यकारों को उत्पन्न किया है, जिन्होंने विपुल साहित्य-सृजन कर राजस्थानी साहित्य-भण्डार को भरा है। उनमें आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु तथा चतुर्थ गणी श्री मज्जयाचार्य का नाम सर्वोपरि है। इन दोनों विभूतियों ने राजस्थानी भाषा में विपुल साहित्य की रचना की। अधिक रचनाएँ पद्यात्मक हैं और उनका विषय भी धार्मिक मान्यताओं के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करना रहा है। इन दोनों विभूतियों ने राजस्थानी गद्य में भी अनेक रचनाएँ लिखीं। इन रचनाओं में राजस्थानी भाषा का वैविध्य नजर आता है। उसका कारण है—मुनिवृन्द का परिव्रजन। जैन मुनि एक स्थान पर नहीं रहते। वे निरंतर परिव्रजन करते रहते हैं। यही कारण है कि उनकी भाषा में विविधता होती है और उसका स्फुट-प्रतिबिम्ब साहित्य में यत्र-तत्र दृग्गोचर होता है। दूसरी बात है कि जैन संघ में विभिन्न प्रान्तों के व्यक्ति प्रव्रजित होते हैं, अतः यह स्वाभाविक भी है कि उनकी अपनी मातृभाषा पर प्रान्तीय भाषा का प्रभाव पड़ता है। उसमें अनेक शब्द उस प्रान्त के आ घुसते है और कालान्तर में उस भाषा के अभिन्न अंग बन जाते हैं। आज राजस्थान में बोली जाने वाली भाषा को राजस्थानी कहा जाता है, किन्तु उसमें भी बहुत अन्तर है। थली प्रदेश की भाषा में भी अन्तर है। बीकानेर की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजस्थानी भाषा और सरदारशहर, चुरू आदि में बोली जाने वाली राजस्थानी में बहुत अन्तर है। जयपुर की भाषा भी भिन्न पड़ती है। इसी प्रकार मारवाड़, मेवाड़, गोड़वाड़, बाड़मेर, पचपदरा, जसोल आदि में व्यवहृत राजस्थानी का भी रूप भिन्न-भिन्न है।

तेरापंथ धर्म-संघ राजस्थान में जन्मा और यहीं पल्लवित और पुष्पित हुआ। इस संघ में प्रव्रजित होने वाले साधु-साध्वी भी राजस्थान के ही थे और उनका विहार-क्षेत्र भी मुख्यतः राजस्थान ही रहा। अनुयायी वर्ग भी राजस्थानी ही था अतः यह स्वाभाविक ही था कि साहित्य-सृजन भी मुख्यतः राजस्थानी भाषा में ही हो।

तेरापंथ धर्म-संघ में आठ आचार्य हो चुके हैं और वर्तमान में नौवें आचार्य श्री तुलसी गणी का शासन चल रहा है। सभी आचार्यों ने राजस्थानी में रचनाएँ लिखीं. किन्तु वे प्रायः पद्यमय हैं। प्रथम आचार्य श्री भिक्षु ने लगभग ३६ हजार श्लोक परिमाण साहित्य लिखा और चौथे आचार्य श्रीमज्जयाचार्य ने साढ़े तीन लाख श्लोक परिमाण के साहित्य की रचना की। इसमें गद्य-पद्य दोनों सम्मिलित है। पद्य साहित्य अधिक है।

प्रस्तुत निबन्ध में मैं केवल तेरापंथ के आचार्यों तथा साधु-साध्वियों द्वारा रचित राजस्थानी गद्य साहित्य का एक परिचय प्रस्तुत कर रहा हूँ।

आचार्य भिक्षु

आचार्य भिक्षु तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक थे। आपका जन्म वि० सं० १७८३ आषाढ़ शुक्ला त्रयोदशी को मारवाड़ कांठा में कंटालिया ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम शाह बलूजी और माता का नाम दीपाँबाई था। आप पच्चीस वर्ष की अवस्था में वि० सं० १८०८ मृगशिर कृष्णा द्वादशी के दिन स्थानकवासी परम्परा के यशस्वी आचार्य रुघनाथ जी के पास दीक्षित हुए। नौ वर्ष तक उनके साथ रहे। फिर आचार और विचार के भेद के कारण आपने वि० सं० १८१७ चैत्र शुक्ला नवमी को बगड़ी गाँव (अब सुधरी) में अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया और उसी वर्ष आषाढ़ी पूर्णिमा को केलवे में पुनः दीक्षा ग्रहण की। वही तेरापंथ की स्थापना का प्रथम दिन था।

आचार्य भिक्षु अपने युग के महान् राजस्थानी साहित्यकार थे। आपने लगभग अड़तीस हजार श्लोक परिमाण साहित्य रचा। इसमें पद्य साहित्य अधिक है, गद्य कम। आपका सम्पूर्ण पद्य साहित्य प्रकाशित हो चुका है।[1] गद्य साहित्य अप्रकाशित है। आपने जैन दर्शन के अनेक विषयों पर साहित्यिक रचनाएँ लिखीं। उनमें मुख्य विषय हैं—दया-दान का विवेक, अनुकम्पा, व्रत-अव्रत आदि-आदि।

आपका गद्य साहित्य मर्यादाओं, लिखितों तथा पत्रों के रूप में प्राप्त होता है। आपने नव-गठित संघ को सुदृढ़ बनाने तथा उसका संरक्षण-पोषण करने के लिए अनेक विधान बनाए। उन विधानों के अध्ययन से उनकी आध्यात्मिक उत्कृष्टता, व्यवहार की निश्छलता तथा अन्यान्य तथ्यों का सहज बोध होता है। वे राजस्थानी गद्य में हैं। उदाहरणस्वरूप—

मर्यादाएँ

(१) आचार्य भिक्षु चाहते थे कि गण में वही रहे, जिसके मन में आचार-साधुत्व के प्रति श्रद्धा हो। जो अन्यमनस्कता या अन्यान्य स्वार्थों के वशीभूत होकर गण में रहता है, वह गण को धोखा देता है। उन्होंने वि० सं० १८४५ के लिखत में लिखा—

> "उण नै साधु किम जाणिये, जो एकलौ वेणरी सरधा हुवै। इसड़ी सरधा धारनै टोला मांहि बैठो रहे छै। म्हारी इच्छा आवसी तौ मांहे रहिसूं, म्हारी इच्छा आवसी जद एकलो हुसूं।..... दगाबाजी ठागा सूं टोला मांहै रहे तो निश्चय असाध छै। मांहे राखै जाणवै त्यांनै पिण महा दोष छै।"

१. भिक्षुग्रन्थरत्नाकर, भाग १, २—प्रकाशक—श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संवत् १८५० के लिखत में लिखा—

"जिण रो मन रजाबंध हुवै, चोखीतरे साधपणौ पलतो जाणै तो टोला मांही रहिणो। आप में अथवा पेला में साधपणो जांणनै रहिणो। ठागा सूं मांहै रहिवा रा अनंत सिद्धां री साख सूं पचखाण छै।"

(२) गण की एकता के लिए आचार्य भिक्षु ने अनेक मर्यादाओं का निर्माण किया। एकता के अनेक आधारभूत तत्त्व हैं। उनमें पारस्परिक सौहार्द और प्रमोद भावना का विकास भी एक है। इसके लिए आचार्य भिक्षु ने वि० सं० १८५० में लिखा—

"किण ही साध आर्यां में दोख देखै तो तत्काल धणी नै कहणौ, अथवा गुरां नै कहणौ। पिण औरां कनै न कहिणौ। पिण घणा दिन आडा घालनै दोख बतावै तौ प्राछित रो धणी उहीज छै।"

संघ संघटन का दूसरा आधार है—केन्द्र पर विश्वास, आपसी दलबंदी से मुक्ति। आचार्य भिक्षु ने वि० सं० १८४५ में लिखा—

"टोला माहै पिण साधां रा मन भांगनै आप आपरै जिलै करै तौ महाभारी करमौ जाणवौ। विसासघाती जाणवौ। इसडी घात पावडी करै। तै तौ अनन्त संसार री साइ छै।"

गण में सैकड़ों साधु-साध्वियाँ, श्रावक-श्राविकाएँ होती हैं। उनका सब अपना-अपना विचार होता है। सोचने का ढंग भी भिन्न-भिन्न होता है। ऐसी स्थिति में किसी प्रश्न पर सब एक मत हो जाएँ, यह सम्भव नहीं है। अतः मुमुक्षुओं को क्या करना चाहिए, उसका स्पष्ट निर्देश आचार्य भिक्षु ने वि० सं० १८४५ के लिखत में इस प्रकार किया—

'जै कोई सरधा रो, आचार रो सूतर रो अथवा कलपरा बोल री समझ न पड़ै तौ गुरु तथा भणणहार साधु कहै तै मांण लेणौ। नहीं तो केवली नै भलावणौ। पिण और साधु रै संका घालनै मन भांगणौ नहीं।'

इसी को आगे बढ़ाते हुए वि० सं० १८५० में लिखा—

'कोई सरधा आचार नौ नवौ बोल नीकलै तो बड़ा सूं चरचणौ, पिण ओर सूं न चरचणौ। .....बड़ा जान देवै, आप रै हियै बैसै मान लैणौ, नहीं बैसे तो केवली नै भलावणौ, पिण टोला मांहै भैद पाडणौ नहीं।'

इसी प्रसंग में वि० सं० १८५९ में लिखा—

'(बोल आदि के विषय में) किण ही नै दोस भ्यास जायै तो बुधवंत साधू री प्रतीत करलेणी। पिण खांच करणी नहीं।'

मर्यादाओं के निर्माण का उद्देश्य कितने सुन्दर शब्दों में अभिव्यक्त हुआ है—

'सिखादिक री ममता मिटावण रौ नै चरित्र चोखौ पालण रौ उपाय कीधो छै। विनै मूल धर्म ने न्याय मारग चालण रो उपाय कीधो छै।'

'विकलां नै मूंड भेला करै ते शिखा रा भूखा। एक-एक रा अवर्णवाद बोलै। फारा-तोरो करै। माहोंमा कजिया, रोड, झगडा करै। एहवा चरित्र देखनै साधां मरजादा बांधी।'

साधु-साध्वियों के पारस्परिक व्यवहार की इयत्ता क्या हो, इसका समाधान करते हुए आपने लिखा—

'आर्यां सूं लेवौ देवौ लिगार मात्र करणौ नहीं। बडांरी आग्न्या विना। आगै आर्यां हुवै जठै जाणौ नहीं। जाअै तौ एक रात रहिणौ। पिण अधिकौ नहीं। कारण पडियां रहैं तौ गौचरी रा घर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाँट लेणा। पिण नितरौ नित पूछणौ नहीं। कनै वैसण दैणी नहीं, ऊभी रहिण दैणी नहीं। चरचा बात करणी नहीं। बड़ा गुरुवादिकरा कह्यां थी कारण री बात न्यारी।'

दो-दो, चार-चार साधु साथ रहते हैं और पाँच-पाँच, सात-सात साध्वियां साथ रहती हैं। उनमें से कोई साधु-साध्वी दोष का सेवन कर ले। तब दूसरे साधु-साध्वियों का क्या कर्त्तव्य होता है, इसका सुन्दर चित्रण भिक्षु ने सं० १८४१ के लिखित में इस प्रकार किया है—

'साध-साध मांहो मांहि भेला रहै, तिहां किण ही साथ नै दोष लागै धणी नै सताब सूँ कहणो, अवसर देखनै, पिण दोष भेला करणा नहीं। धणी नै कह्यां थकां प्राछित लैवै तो पिण गुरां नै कहि देणौ। जो प्राछित ले तो प्राछित रा धणी नै आरै कराय नै, जे जे बोल लिखनै उणनै सूंप देणौ। इण बोल रौ प्राछित गुरु थांने देवै तो लीजौ। जो इण रौ प्राछित न हुवै तो ही कहिज ो। थे गाला गोलो कीजौ मती। जो थे न कह्यो तौ महारा कहिवा रा भाव छै। संका सहित दौष भासै तो संका सहित कहिसूं। निसंक पणै दोष जाणूं छूं तै निसंकपणै कहिसूं। नहीं तौ अजै ही पाधरा चालौ।'

'म्हैं उणानै छोड्या जद पाँच वर्ष तांइ तो पूरो आहार न मिल्यो। घी चोपर तो कठै। कपडो कदाचित् वासती मिलती ते सवा रुपया री। तो भारमलजी स्वामी कहिता पछैवडी आपरै करौ। जद स्वामीजी कहिता एक चोलपटौ थारै करो, एक म्हारै करो। आहार पाणी जाचने उजाड़ में सर्व साध परहा जावता। रूँखरा री छाया तो आहार पाणी मेलनें आतापना लेता, आथण रा पाछा गाम में आवता। इण रीतै कष्ट भोगता। कर्म काटता। म्है या न जाणता म्हारो मारग जमसी नै म्हां मै यूं दीक्षा लेसी ने यूं श्रावक श्राविका हुसी। जाण्यो आत्मा रा कारज सारसां मर पूरा देसां इम जाण नै तपस्या करता। पछै कोई-कोई के सरधा बेसवा लागी। समझवा लागा। जद थिरपालजी फतैचन्दजी माहिला साधां कह्यो—लोग तो समझता दीसै है। थे तपस्या क्यूं करौ। तपस्या करण में तो म्हें छांईज। थे तो बुद्धिमान् छो सो धर्म रो उद्योत करौ। लोकां ने समझावो। जद पछै विशेष रूप करवा लागा। आचार अणुकंपा री जोडां करी। व्रत अव्रत री जोडां करी। घणा जीवां ने समझाया। पछै वखान जोड्यो। —भिक्षु दृष्टान्त २७६

इस गद्य में स्वामीजी के अन्तःकरण की भावना, पवित्रता, निरभिमानता और साधना की उत्कटता स्पष्ट झलकती है।

थोकडा

आपने कई 'थोकडे' लिखे। उनमें 'तेरह द्वार' का थोकड़ा बहुत प्रसिद्ध है। इसमें नौ तत्त्वों—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष—को तेरह विभिन्न द्वारों (अपेक्षाओं) से समझाया गया है। वे तेरह द्वार हैं—मूल, दृष्टान्त, कुण, आत्मा, जीव, अरूपी, निरवद्य, भाव, द्रव्य, गुण-पर्याय, द्रव्यादिक, आज्ञा, विनय, तालाब।

मैं इनकी स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए प्रथम तथा अन्तिम द्वार का उल्लेख करता हूँ—

'जीव ते चेतना लक्षण, अजीव ते अचेतना लक्षण, पुण्य ते शुभ कर्म, पाप ते अशुभ कर्म, कर्म ग्रहै ते आस्रव, कर्म रोकै ते संवर, देशथकी कर्म तोड़ी देशयी जीव उज्ज्वल भाव ते निर्जरा, जीव संघाते शुभाशुभ कर्म बन्ध्या ते बन्ध, समस्त कर्मों से मुकावै ते मोक्ष।' —द्वार पहला

'तलाब रूपी जीव जाणवो। अतलाब से तलाब रूपी अजीव जाणवों। निकलता पाणी रूप पुण्य-पाप जाणवा। नाला रूप आस्रव जाणवो। नाला बंध रूप संवर जाणवो। मोरी करी ने पाणी काढ़े ते निर्जरा जाणवो। मांहिला पाणी रूप बंधजाणवो। खाली तलाब रूप मोक्ष जाणवो।'—द्वार तेरहवाँ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाव की चर्चा

जैन दर्शन में भाव पाँच माने गये हैं—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक। भाव का अर्थ है—कर्मों के उदय, उपशम आदि से होने वाली अवस्था। आचार्य भिक्षु ने आठ कर्मों के इन पाँच भावों का विस्तार से वर्णन किया है। जैसे—

'उदै भाव मोहकर्म उदै सुं उदै भाव छै। ते तो सावद छै। सेष ७ कर्मों रे उदै सुं उदै भाव छै ते सावद निर्वद दोनुंई नथी। अनै उपसम भाव छै ते तो मोहणीकर्म उपसमिया थाय। दर्शणमोहणी उपसमियाँ तो उपसम समकत पामें अनै चार्तमोहिणी उपसमियाँ उपसम चार्त पामें।'

.....इव्रत तो अनादकालरी छै। मोहणी कर्म रा जोग सुं आसा बांध्या लाग रही छै। यांसु सावद कृतव्य करै ते पिण मोहिणी कर्मरा उदासुं करै छै। ते पिण इण उदै रा कृतव्य औगण छै। पिण खयोपसम में औगण नहीं।.....

योग की चर्चा

जैन दर्शन में तीन योग माने हैं—मनो-योग, वचन-योग और काय-योग। ये शुभ-अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं। उनके 'लघु निबन्ध योग री चरचा, में इनके शुभ-अशुभ होने के निमित्तों की चर्चा है। इस विषय का इतना सूक्ष्म विवेचन विरल ही मिलता है।

एक सौ इक्यासी बोलां री हुंडी

हुंडी आगम को सप्रमाण संक्षिप्त निरूपण करने की विधा है। आचार्य भिक्षु ने साधु-साध्वियों की आगम विषयों की विशेष स्मृति रह सके, इसलिए विभिन्न हुंडियां बनाईं। उन दिनों स्थान-स्थान पर धार्मिक चर्चाएँ होती थीं। जय-पराजय का प्रश्न उभरा हुआ था। जो वादी आगमिक स्थलों के अधिक प्रमाण प्रस्तुत करने में कुशल होता था वह अपने प्रतिवादी को सहजता से पराजित कर देता। उस समय से हुंडियाँ बहुत काम आती थीं। क्योंकि आगमों के सारे विषयों की स्मृति रख पाना बहुत कठिन कार्य है। किन्तु आवश्यक स्थलों की स्मृति भी किसी विधि से ही रखी जा सकती थी। इस विषय में हुंडियों ने वहुत सहयोग दिया।

प्रस्तुत ग्रन्थ में भिन्न-भिन्न विषयों पर भिन्न-भिन्न आगमों के प्रमाण प्रस्तुत किये हुए हैं। सारे विषय १८१ हैं। इस ग्रन्थ का प्रारम्भ साहित्यिक ढंग से हुआ है।

जे हलुकरमी जीव होसी ते सुण-सुण ने हरष पामसी। त्यागने न्याय मारग बतायां सु सुसाधां ने उत्तम जाणसी। कुगुरु ने छोड़ सतगुरु ने आदरसी। जे भारी कर्मी होसी से सुण-सुण ने धेख पामसी। .....। त्यांने दिष्टंत देइ नै ओलखावै छै; चोर ने चांनणो न सुहावै ज्यूं भारी करमां जीवां ने आचार री बात न सुहावै। घुघु ने दिन ने न सूजे, ज्यूं भारी करमां.....। रोगी ने वाजित्र न सुहावै, ज्यूं भारी करमां.....।

ताव चढ्यो तिण नै धान न भावै, ज्यूं.....। पांव रोगी ने खाज सुहावै, ज्यूं.....। सरपरा जहर चढ्यां ने नींव कडवो न लागै, ज्यूं भारी करमा जीवां नै भिष्ट आचारी भागल गुरु कडवा न लागै। .....।

हुंडी के क्रम को समझने के लिए उसके कुछ बोल नीचे लिखे जा रहे हैं—

(१) साध थई नै सिज्यातरपिंड भोगवै त्यांने अणाचारी कह्या।

—साख सूत्र दसवेकालक, अधेन ३। (बोल २८)

(२) साध थई नै सिज्यातरपिंड भोगवै तिण ने मासिक प्राछित आवै।

—साख सूत्र नसीत, उदेसो २। .....।

इसका ग्रन्थमान लगभग ७०० अनुष्टुप् श्लोक प्रमाण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

टीकम डोसी की चरचा

टीकम डोसी कच्छ के मोरवी बंदर नामक शहर के वासी जैन श्रावक थे। वे तत्त्वज्ञ और आगमों के जानकार थे।

जोधपुर के पुष्कर ब्राह्मण श्री गेरूलालजी व्यास स्वामीजी (आचार्य भिक्षु) के श्रावक थे। एक बार वे मोरवी गए। वहाँ टीकम डोसी से बातचीत की। टीकम डोसी ने स्वामीजी के मंतव्यों के रहस्यों को समझा। उनके मन में स्वामीजी से मिलने की उत्कण्ठा जागी। वे अपने अनेक प्रश्नों का समाधान पाने के लिए वि०सं० १८५३ में कच्छ से पाली आए। उन्होंने अपनी शंकाओं के उनतीस ओलिया (ऐसे पन्ने जो लम्बे ज्यादा हों और चौड़े कम) लिख रखे थे। वे बहुभाषी थे। स्वामीजी ने उन ओलियों को पढ़ा और एक-एक शंका का समाधान लिखकर पढ़ाते गए। लगभग छबीस ओलिओं में लिखी सारी शंकाओं का समाधान हो गया, किन्तु तीन ओलियों में लिखी शंकाओं का समाधान नहीं हो पाया। वे स्वामीजी के तत्त्वज्ञान और प्रश्न-समाहित करने की कला से बहुत प्रभावित हुए।

वि०सं० १८५९ में टीकम डोसी का मन योग के (मन, वचन और काया) विषय में शंकित हो गया। शंका-समाधान करने वे मारवाड़ आए। प्रश्नों का समाधान पा कच्छ लौट गए। कुछ वर्षों बाद पुनः मन शंकित हो गया। इस बार वे स्वामीजी के पास नहीं आ सके। अन्त में पन्द्रह दिन का चौविहार अनशन कर मृत्यु प्राप्त की।[1]

स्वामीजी ने टीकम डोसी से हुई चरचा को लिपिबद्ध कर लिया। वह 'टीकम डोसी की चरचा' के नाम प्रसिद्ध है। यह राजस्थानी गद्य में है।

श्रीमज्जयाचार्य

आप तेरापंथ के चौथे आचार्य थे। आपका नाम था 'जीतमलजी'। परन्तु आप जयाचार्य के नाम से ही प्रसिद्ध थे। आपका जन्म जोधपुर डिवीजन के अन्तर्गत 'रोयट' ग्राम में विक्रम संवत् १८६० आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को हुआ। बाल्यकाल से ही वैराग्य के अंकुर प्रस्फुटित होने लगे। जब आप नौ वर्ष के हुए तब वि०सं० १८६९ में माघ कृष्णा सप्तमी को जयपुर में प्रव्रजित हुए। आपको प्रारम्भ से ही बहुश्रुत मुनिश्री हेमराजजी स्वामी को सान्निध्य मिला, अतः आपका ज्ञान शतशाखी वट की भाँति फैलता ही गया। लगभग बारह वर्ष तक उनके उपपात में मुनिचर्या के शिक्षण के साथ-साथ आगमों का भी गहरा अनुशीलन किया। तथ्यों के बार-बार आलोड़न-विलोड़न से आपकी मेधा तीखी होती गई और उसमें नए-नए उन्मेष आने लगे।

वि०सं० १९०८ माघ पूर्णिमा के दिन आप आचार्य पद पर आसीन हुए।

श्रीमज्जयाचार्य श्रुत के अनन्य उपासक थे। विद्यार्जन की लालसा ने उन्हें निरन्तर विद्यार्थी बनाये रखा। यही कारण है कि उन्होंने अपने जीवन काल में लाखों-लाखों पद्यों की स्वाध्याय के साथ-साथ साढ़े तीन लाख पद्य-प्रमाण का राजस्थानी साहित्य रचा। बाल्यावस्था से ही वे अध्ययन के साथ-साथ साहित्य का सृजन भी करने लगे थे। उन्होंने ग्यारह वर्ष की लघु वय में 'संत गुणमाला' की रचना कर सबको आश्चर्य में डाल दिया। धीरे-धीरे ज्ञान की प्रौढ़ता के साथ उनकी रचनाओं में भी प्रौढ़ता आती गई। वर्तमान की आधुनिक विधाओं में भी उनकी लेखनी अबाध गति से चली। उनमें संस्मरण-लेखन, जीवनी-लेखन, कथा-लेखन आदि मुख्य हैं। आपने राजस्थानी गद्य-पद्य में अपने जीवनकाल का इतिहास लिपिबद्ध किया और प्राचीन इतिहास की कड़ी को भी सुरक्षित रखने का प्रयास किया। यदि आप इस ओर सजग नहीं होते तो सम्भव है तेरापंथी इतिहास की प्रारम्भिक ऐतिहासिक घटनाएँ हमें उपलब्ध नहीं होतीं।

श्रीमज्जयाचार्य बीसवीं शती के महान् राजस्थानी साहित्यकार और सरस्वती के वरद पुत्र थे। राजस्थानी भाषा में इतना विपुल साहित्य किसी एक व्यक्ति ने लिखा हो ऐसा ज्ञात नहीं है। आप द्वारा रचित १२८ ग्रन्थ

१. भिक्षु दृष्टान्त, १९४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसका स्वयंभू प्रमाण है। इनमें जीवन चरित्र, आख्यान, कथानक, संस्मरण, स्तुतियाँ, गण का विधान, मर्यादाएं, इतिहास, दृष्टान्त, उपदेश, व्याकरण, आगमों का प्रद्यानुवाद, दर्शन आदि-आदि अनेक विषय संगृहीत हैं। इनमें लगभग ५० ग्रन्थ गद्य में और शेष पद्य में हैं। गद्यमय रचनाओं का विषय हैं—१.तत्त्व विवेचन, २. कथा, ३. पत्र, ४. विधान, ५. व्याकरण की साधनिका, ६. संस्मरण, ७. दृष्टान्त, ८. आगमों की टीका (टब्बा), ९. हुण्डियाँ, १०. आगमों का विषयानुक्रम—आदि-आदि।[1]

आप द्वारा लिखित गद्य साहित्य विपुल मात्रा में उपलब्ध है। उसमें सबसे बड़ा ग्रन्थ है—'कथा रत्न कोष'। इसमें लगभग दो हजार कथाएँ हैं। आपने 'भिक्खु दृष्टान्त' नाम का एक गद्य-ग्रन्थ लिखा। यह संस्मरणात्मक गद्य-साहित्य का उत्कृष्ट नमूना है। इस ग्रन्थ पर हिन्दी भाषी तथा अहिन्दी भाषी विद्वानों ने महत्त्वपूर्ण अभिमत लिखे हैं।

अब मैं आपके सामने उनकी राजस्थानी गद्य में लिखित रचनाओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहा हूँ।

(१) **भ्रम विध्वंसन**—वह धर्म-चर्चा का युग था। सब अपनी-अपनी मान्यता को शास्त्र-सम्मत सिद्ध करने का प्रयास कर रहे थे। जयाचार्य के जीवन में भी धार्मिक चर्चा के अनेक प्रसंग आए। तेरापंथ को प्रकाश में आए एक शताब्दी पूरी हो चुकी थी। उसकी मान्यताएँ बद्धमूल हो गई थी। फिर भी उनको आगमिक प्रमाणों से सिद्ध करने की परम्परा चालू थी। आपने उस समय के प्रमुख विवादास्पद विषयों को शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर विवेचित किया। उसका समग्ररूप 'भ्रम विध्वंसन' के नाम से प्रथम बार व्यवस्थित रूप में वि० सं० १९९० में गंगाशहर निवासी सेठ ईश्वरचन्दजी चोपड़ा ने, ओसवाल प्रेस, कलकत्ता से मुद्रित करवाया। इसमें २४ अधिकार हैं। इसका ग्रन्थ परिमाण १००७५ अनुष्टुप् श्लोक जितना है। जैनगमों के रहस्यों को समझने में यह अनुपम गद्य कृति है।

(२) **संदेह विषौषधि**—इसमें जीवन व्यवहार से सम्बन्ध रखने वाले अनेक विषय चर्चित हैं। यह चर्चा आगमिक संन्दर्भ में की गई है। इसमें परिच्छेदों की 'रत्न' संज्ञा दी गई है। वे चौदह हैं—१. छठा गुणठाणा री ओलखाण, २. संयोग, ३. ववहार, ४. आहार, ५. कल्प, ६. अन्तरघर ७. श्रावक अविरति, ८. अन्तरिक्ष, ९. ईर्यापथिकी क्रिया, १०. तीर्थ, ११. निरवद्य आमना, १२, तपो प्रसिद्धकरण, १३. भाव तीर्थंकर, १४. सूखा धान।

इसका ग्रन्थमान १७०० अनुष्टुप् पद्य परिमाण है। इसका रचनाकाल प्राप्त नहीं है।

(३) **जिनाज्ञा मुखमंडन**—जैन मुनि-चर्या का आधार आगम हैं। उनमें उत्सर्ग और अपवाद के अनेक निर्देश प्राप्त हैं। बहुश्रुत मुनि के लिए यह आवश्यक है कि वह साधारण मेधा वाले व्यक्तियों के लिए उन अपवादों की स-प्रमाण व्याख्या करे जिससे कि प्रत्येक मुमुक्षु आपवादिक सेवन को शिथलता का आधार न मान बैठे। मूल सूत्रों में कुछेक अपवादों के सेवन का विधान प्राप्त है। उनके आसेवन से मुनि पाप से स्पृष्ट नहीं होता। इस ग्रन्थ में उनमें से कुछेक निर्देशों की सप्रमाण और सयुक्ति व्याख्या प्रस्तुत की गई है। वे कुछ विषय हैं—

(१) ज्ञान, दर्शन और चारित्र की वृद्धि के लिए नदी पार करना—नौका द्वारा या पैदल चलकर भी।
(२) रात्रि में देहचिन्ता से निवृत्त होने के लिए खुले आकाश (राज० अछायां) में जाना।
(३) पानी में डूबती हुई साध्वी को साधु द्वारा हाथ पकड़कर निकालना।
(४) पाट-बाजोट आदि में से खटमल आदि निकालना; आदि-आदि :

इसका ग्रन्थमान १३७८ है। इस ग्रंथ की पूर्ति वि० सं० १९९५ ज्येष्ठ कृष्णा सोमवती अमावस्या को हुई।

(४) **कुमति विहंडन**—यह भी तात्त्विक ग्रन्थ है। इसमें मुख्यतः मुनि के आचार-विचार से सम्बन्धित कुछेक

---

१. समस्त ग्रन्थों के संक्षिप्त परिचय के लिए देखें—मुनि मधुकर द्वारा लिखित 'जयाचार्य की कृतियाँ : एक परिचय' (वि०सं० २०२१ में जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शंकाओं का सरस राजस्थानी में समाधान प्रस्तुत किया गया है। इसका ग्रन्थमान १२४२ श्लोक परिमाण है। इसकी संपूर्ति वि० सं० १८९४, पाली चातुर्मास में हुई।

(५) **प्रश्नोत्तर सार्धशतक**—इसमें विभिन्न विषयों पर १५१ प्रश्नों के उत्तर दिये हुए हैं। कुछ प्रश्न तात्विक हैं, कुछ प्रश्न आगमों के निगूढ स्थलों का उद्घाटन करने वाले और कुछ मुनि-चर्या से सम्बन्धित हैं।

इसका ग्रन्थाग्र १५७८ श्लोक परिमाण है। इसकी रचना वि० सं० १८९४ में होनी चाहिए।

राजस्थानी में तत्त्व की गम्भीर चर्चा की जा सकती है। उसमें इसकी क्षमता है। उसका एक उदाहरण यह है—

'पन्नवणा पद १७ में फुसमाण, अफुसमाण गति, ते केहनै कहीजै' (ओ प्रश्न)

'अफुसमाण गाही जे सभी श्रेणी अने जे ठांमे रह्यो हुंतो, जेतलाज आकाश प्रदेश फरस्यां हुंता अने तिहां थी गति करै तेतलाज आकाश प्रदेश फरसतो चालै ते अफुसमाण गति अनें फुसमाण ते नवा नवा बांका प्रदेश फरसै, ओछा अधिक फरसै ते फुसमाण गति। सिद्ध नी अफुसमाण गति छै। 'दुहउ खुहागई' ते कुण ? बेहुं ना अंतर ने ठामै विग्रह गति फिरै फरसै ते 'दुहउ खुहागई' विहुं आकाश प्रदेश फरसै छै जे माटे॥'[1]

(६) **चरचा रत्नमाला**—इस कृति में आपने विभिन्न स्थानों पर चर्चा के रूप में हुए प्रश्नों का संकलन कर उत्तर प्रस्तुत किये हैं। यह अधूरी कृति है। इसका ग्रन्थमान १४६१ श्लोक परिमाण है।

ध्यान योग—श्रीमज्जयाचार्य धर्म-संघ के प्राणवान अनुशास्ता होने के साथ-साथ अध्यात्मयोगी भी थे। जब सब सो जाते तब आप जागृत होकर ध्यान में लीन हो जाते। उनका अध्यात्म प्रखर था। वे प्राणों को सूक्ष्म कर, कपाल में ले जाते और वहाँ उसे स्थिर कर देते। यद्यपि उनकी ध्यान-प्रक्रिया के विषय में विशेष उल्लेख नहीं है फिर भी उनके द्वारा लिखित कुछेक स्फुट पन्नों से तथा उनके द्वारा रचित दो ध्यानों—बड़ा ध्यान और छोटा ध्यान, से यह तथ्य ज्ञात होता है कि वे महान् ध्यानी थे। रंगों के आधार पर ध्यान करना भी आपको ज्ञात था। और इस विधा से ध्यान करते भी थे।

दूसरी बात यह कि श्रीमज्जयाचार्य स्वाध्याय-प्रेमी थे। स्वाध्याय करने की उनकी प्रवृत्ति स्वयं में एक आश्चर्य है। तेरापंथ के पाँचवें आचार्य मघवा गणी ने उनकी स्वाध्यायशीलता की एक नोंध स्वरचित 'जयसुजश' में प्रस्तुत की है। उसके द्वारा यह जाना जाता है कि आपने अपने आठ वर्षों में लगभग ८७ लाख गाथाओं की स्वाध्याय की थी। जिस व्यक्ति का जीवन इतना स्वाध्यायरत हो वह सहज ही ध्यान-कोष्ठ में जाने का अधिकारी हो जाता है। जो इतने स्वाध्यायशील होते हैं उनकी बहुश्रुतता और गीतार्थता का कहना ही क्या ?

(क) **बड़ा ध्यान**—इसके प्रारम्भ में बैठने की विधि और ध्यान में प्रवेश करने से पूर्व ध्यान-साधक को मन की एकाग्रता के लिए क्या करना चाहिए और फिर ध्यान को कैसे एकाग्र करना चाहिए, इसका निर्देश है। इसमें अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु—इन पाँच पदों को ध्यान का आलम्बन बनाकर, इनके भिन्न-भिन्न रंगों पर ध्यान करने की प्रक्रिया का निर्देश है। इसका ग्रन्थमान १५० अनुष्टुप् श्लोक प्रमाण है। इसका रचना काल अज्ञात है। इसकी पदावली ललित और सुरम्य है—

'प्रथम तो पद्मासनादिक आसन थिर करी काया नो चंचल पणो मेटी ने मननो पिण चंचल पणो मेटणो। पछे मन बाहिर थकी अंदर जमावणो। विषयादिक थकी मन ने मिटाय ने एकत्र आणणो। ते मन ठिकाणे आणवा निमित श्वासासूरत लगावणी। प्रवेश में 'सकार', निर्गमन में 'हकार'। 'सोहं' एसो शब्द अणबोल्यां उच्चरै।.....

---

१. प्रश्नोत्तर सार्धशतक, प्रश्न १३८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इम करतां ते मननी थिरता हुवै। तिवारे पछे तीर्थंकर नो ध्याण करणो। २४ तीर्थंकर जे रंगे थया ते तीर्थंकर रंग सहित चितवणा। आप बैठो तिण आगै हाथ दोय तथा तीन तथा चार हातरे आंतरे तीर्थंकर थापणा। जाणै इण ठिकाणै भगवंत विराज्या छै। थिर आसणै छै। रंग काले छै, तथा नीले छै तथा पीले छै तथा राते छै तथा धवले छै। ए पाँचुई रंग मांहि आप रो मन हुवै सो ही रंग री चितवणा करणा।.....'

(ख) **छोटा ध्यान**—इसका ग्रन्थ-परिमाण केवल ३७ अनुष्टुप् श्लोक जितना है। इसमें पांचों पदों के गुणों के ध्यान का विवरण है।

इतिहास संकलन—श्रीमज्जयाचार्य महान् इतिहासकार थे। उन्होंने अपने जीवन काल में घटित छोटी-मोटी घटनाओं का अविकल संकलन किया। उन्होंने अपने विद्यागुरु हेमराजजी स्वामी से बहुत कुछ सुना। और उसे तत्काल लिपिबद्ध कर उसे स्थायित्व दे डाला। ऐसा ही एक ग्रन्थ 'दृष्टान्त' के नाम से प्रसिद्ध है। उसके चार पत्र हैं और वे मूल राजस्थानी गद्य में लिखे गए हैं। युवाचार्य अवस्था में श्रीमज्जयाचार्य ने विक्रम संवत् १९९३ का चातुर्मास मुनिश्री हेमराजजी के साथ नाथद्वारा मेवाड़ में बिताया। वहाँ हेमराजजी स्वामी ने प्राचीन इतिहास की कई बातें सुनाई। श्रीमज्जयाचार्य ने उनका संकलन किया। उसका प्रारम्भ इस प्रकार है—

'हेमजी स्वामी मूंहढा सूं एती वारता लिखाइ ते सं० १९०३ चौमासा में, ते लिखियै छै।'

'सोजत में अणंदै पटवै कह्यो—हूँ तौ इण भीखनीया रो मूंहढो न देखूं। इम बार-बार क्रोध रै वस बोल्यौ। पापरा उदाथी सातमै दिन आंधौ होय गयौ। लोक बोल्या—बचन तौ अणंदैजी तीखौ पाल्यौ। आंधा होय गया सो भीखनजी रो मूंहढो कदेइ देखै नहीं। लोक में घणी निंद्या पायी। (दृष्टान्त १)'

इन संस्मरणों में तात्कालिक स्थिति का भी सुन्दर बोध होता है। उस समय आबादी कम थी। यातायात के साधन भी इतने नहीं थे। मुनिजन जब एक गाँव से दूसरे गाँव में विहार करते तब मार्ग में उन्हें अनेक आपत्तियों का सामना करना पड़ता था। मार्ग में चोर, लुटेरे उन्हें लूट लेते, अनेक यातनाएँ देते। वे कपड़े उतरवा लेते और यदा-कदा पात्रों को भी ले लेते थे।

'नगजी जातिरो गूजर। तिण घर छोड़नै भेष पहिर्‌यो। ते दोनूं गुरु चेला विहार करता थकां 'करेहै' आवै। मारग में एक चोर उठ्यो सो गुरां रा तो कपड़ा खोस लीया, नगजी रा लैवा लाग्यौ जद नगजी बोल्यौ—थां कनै तरवार है। म्हांरै लौहरो संगटो करणो नहीं सो सस्त्र अलगा मेल दै। जद तिण सस्त्र दूरा मेल्या। कपड़ा लैवा आघौ आयौ तद नगजी चोर रा दोनुं बाहुडा पकड्या, पछावट लाग्यौ जद तिण रो गुरु बोल्यो—'रै अनरथ करै। मनख मारै।' जद नगजी बोल्यो—'यूं साधां नै खोसै जद विचरस्यां किस तरह श्यूं। म्हैं तो घर में ई घणाई सुसला मार्या था। जाण्यौ एक सुसलौ वधतो मार्यो। एक तैलौ प्राछित रो ऊरौ लैसूं, पिण इण नै तो छोडूं नहीं। पछै गुरु घणौ कह्यो, मार मती, जद कमरडी दोरी सूं दोनूं हाथ पूठै बाँध णांम रै गौरवै आण नै छोड दीयौ।' —(दृष्टान्त २५)

इतिहास अतीत को जोड़ने वाली कड़ी है। प्रत्येक परम्परा अतीत की घटनाओं से प्रेरणा लेती है। एक प्रेरक घटना प्रस्तुत है जो कि भाव और भाषा—दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं—

'कोटवाला दौलतरांमजी माहिथी चार आया—बडौ रूपचंद, छोटो रूपचन्द व्रधमानजी, सुरतौ। तिण में सुरतौ तौ थोड़ा दिन रही छूट गयौ। अनै व्रधमांनजी घणां वर्स साध पणौ पाल्यौ, पछै ढूंढार में मारग में लू लागी, चामडों खाच्यां हाथ में आवै। इसौ सरीर सीझ गयौ। हालतां हेठा पड़ गया। बेठा होय चलतां फैर हेठा पड गया। साथै अखैरामजी मायारामजी हुँता तै गाम मांही थी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मांचो आण छाया कीधी। संथारो कराय दीयो। थोडी वैला थी दिनरा ईज आउखो पूरो कीयो। परिणाम घणा सैंठा रह्या, इसा उत्तम पुरुष।' —(दृष्टान्त ३६)

निम्न गद्यांश में तात्कालिक परम्पराओं का उल्लेख ही नहीं, उस समय में प्रचलित शब्दों का कितना सुन्दर समावेश हुआ है—

'विजैचंद पाटवो पाली मैं **लोकाचरीयो** गयो। एक मोटी लोटी भरनै सिनान करै, जद वावेचा बोल्या—विजैचंद भाई तुम्हें ढूँढिया सो पाणीमें पैसनै सिनान पिण न करो जद विजैचंदजी बोल्या—हूँ थानें **भरभोलीयां** री माला समान जाणूं छूं। होलीरा दिनां मैं **छोहरीयां** भरमोलीया करै–औ म्हारै **खोपरो**, औ म्हारै **नालेर** इम नांम दीया पिण है गौबर नो गौबर। ज्यूँ थै मनख जमारो पाया पिण दया धर्मरी ओलखाण विणा पसू सरीखा हो।'

कथा-कोष—श्रीमज्जयाचार्य एक असाधारण वक्ता थे। वक्तृत्व के लिए बहुविध सामग्री की अपेक्षा होती है। उसमें छन्द, कवित्त, श्लोक, कथा आदि-आदि की उपयुक्तता होने पर वह और प्रभावशाली हो जाता है।

सफल वक्ता वही होता है जो भिन्न-भिन्न रुचि वाले श्रोताओं को मनोनुकूल सामग्री से परितुष्ट कर सके। श्री मज्जयाचार्य के समय में अनेक साधु अपने वक्तृत्व-कौशल के लिए प्रसिद्ध थे, किन्तु साध्वियाँ अभी उस ओर प्रस्थित ही हुई थीं। श्रीमज्जयाचार्य ने उनको इस कला में प्रशिक्षित करने के लिए एक ऐसा संकलन तैयार किया जिसमें वक्ता के लिए उपयोगी सभी छोटे-बड़े तथ्य संकलित थे। इस ग्रन्थ का नाम 'उपदेश-रत्न-कथा-कोष' रखा। इसमें लगभग १०८ विषयों पर कथाएँ, दोहे, गीतिकाएँ आदि का संकलन है। इसमें कथा-भाग अधिक है लगभग दो हजार कथाएँ हैं। प्रत्येक विषय से सम्बन्धित कथाओं के साथ-साथ गीतिकाएँ और अन्यान्य सामग्री भी है। इसका ग्रन्थमान लगभग छासठ हजार पद्य परिमाण है। यह संकलन समय-समय पर किया गया था। इसमें लोक-कथाओं का भी संग्रह हुआ है। इसमें प्रयुक्त शब्द तथा मुहावरे ठेठ राजस्थानी भाषा की समृद्धि की याद दिलाते हैं। यह राजस्थानी भाषा का विशाल गद्य-ग्रन्थ है। इसमें मुगल साम्राज्य से सम्बन्धित कुछ घटनाएँ हैं तो कुछ घटनाएँ अँग्रेजी सल्तनत से सम्बन्धित भी हैं। राजा-महाराजाओं की कुछ घटनाएँ भी संग्रहीत हैं। इसके सम्पादन और प्रकाशन से इतिहास की कई नई बातें सामने आ सकेंगी—ऐसी आशा की जा सकती है। इस ग्रन्थ में संकलित कथाओं का सम्पादन हो रहा है। उदाहरणस्वरूप दो-चार कथाएँ प्रस्तुत करना अप्रासंगिक नहीं होगा—

(१) **अनरगल झूठ**—एक सैहर में चार वाहिला भाई रहै। ते चारूँई गप्पी, कितोली। माहोंमां हेत घणा। चारां मैं एक तो आंधो, दूजो बोलो, तीजो पांगलो, चौथा नागो। ए च्यारूँ ही झूठा बोला। ठाला बैठा झूठी-झूठी बातां करैं।

एक दिन आंधो बोल्यो—भाइजी! उण डूंगर ऊपर किडी चालै; हूँ देखूं। थांनै दीसे है के?

जद दूज्यो बोल्यो—कीडी दीसवारी बात छोड़। कीडी चालती रा पग बाजै, तिण रा शब्द हुंइ सुणूं हुँ।

जद पांगलो बोल्यो—चालो देखां।

जद चौथो नागो बोल्यो—चालां तो सरी पण खतरो है। चोर म्हारा कपड़ा खोस लेसी तो कांइ करसूं। सीयाले सीयां मरसूं, लोकां में लाज जासी।'

आ बात सुणनै लोक बोल्या—धत्। चारूंई झूठा बोला। किण नै दीसे, कुण सुनै, कुण चालै, किण रै कपड़ा सो खोस लेसी नै लाज जासी।

त्यांरी पेठ गई। इम जाण अनरगल झूठ, कितोल न करणी।

(२) **पींजारो**—एक पींजारो रूई पींजवा लागो। बेटा रो नाम जमालो। जमालो रूई चोर-चार ने कोठी में घालै। रूई थोडी हुंती। जद पींजारो बोल्यो—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'बस कर जमला। बसकर, एताही मैं तसकर।'

जद रूई रो धणियाणी हंसवा लागी। जद पींजारो बोल्यो—'हंसेगा सो रोवेगा'।

जद धणियाणी बोली—'किसका आंण पजोवेगा ?' ए रोस्यूं मैं क्यूं। रजाई तो पूरी भरनी ही पड़सी। मैं जाणूं हूँ तूं कोठी में रूई घाली है। पण बीरा ! थारै ध्यांन में रेहवै—मैं कीन कीं बत्ती ही लेसूं, घटती कोनी ल्यूं।'

(३) **ठग साधू**—एक साहूकार परणीज नै परदेश गयौ। बारै वरस तांई परदेस रह्यो। लाखा रुपैइया रो माल कमायो। सोनो, रूपो, हीरा, पन्ना माणक, मोती (तथा) अवर वस्तु लेने घरै आयो। संसार रा सुख भोगवतां एक बेटो हुआ। धणी धण्यांणी दोय जणा; तीजो डावडो। पेहर दिन पाछलो रहै; जद सेठ घर आवै। हवेली रा दरवाजा जड़ दे। ऊपर मालिया मैं इस्त्री सहित बैठो रेवै। मालिया मेईज रसोइ जीमने सूय रहै।

एक ठग अतीत रै भेख गांम में फिरै। इण सेठ रा घर री हगीगत सारी धारी। दोफारां हवेली में आयनै लुक गयौ। सदा री रीते सेठ आयनै; बारणा जडने; रसोई जीमने राते सूतो। अबे ठग ऊँचो आयो। साहूकार रों मोहरां री गांठडी बांधी। धणी धण्यांणी दोनूंई नींद में सूता। अतीत छोरा रै हेठै गोबर न्हाखनै चूंठियो भर्‌यो जद छोरो रोवा लाग्यो। स्त्री जागी। धणी नै जगायो (कह्यो) छोरै हांग्यो है; सो चालो; बारे ले जायने धोवां। अ तो दोई बारे धोवा गया। लारे ठग मोहरां लेनै; हवेली रा दरवाजा खोलने निकल गयो। इसा ठग संसार में साधू रा भेख लिया फिरे।

(४) **नव नाता**—एक पींजारो नव नाता न्यायो। पींजण सूं रूई पींजतो हो कि नवमा नातावाली पींजारी आई। तिण ने देख ओ अहंकार में बोल्यो—नवधर, नवधर, नवधर, नवधर।'

जद पींजारी पिण टेढ़ में एक दूहो बोली—

नवधर-नवधर क्या करै, मुझै आत है रीस।
तूं मरसी जद और करूंगी, तौ पूरा हवेला बीस॥

ईसा अहंकारी भिनख भूंडा दीसे।

व्याकरण—जैन आगमों को समझने के लिए उनके व्याख्या-ग्रन्थों (टीकाओं) को समझना बहुत आवश्यक है। टीकाएँ संस्कृत भाषा में लिखी गई हैं। संस्कृत का अध्ययन श्रम-साध्य है। श्रीमज्जयाचार्य आगम के पारगामी बहुश्रुत विद्वान् थे। संस्कृत की टीकाओं के अध्येता थे, फिर भी संस्कृत भाषा को क्रमबद्ध सीखने की उनकी लालसा बनी रहती थी।

वि० सं० १८८१ का उनका चातुर्मास मुनि हेमराजजी के साथ जयपुर में था। वहाँ एक श्रावक का लड़का संस्कृत व्याकरण पढ़ता था। कहा जाता है कि वह 'हटवा' जाति का था।[1]

श्री मज्जयाचार्य उस समय इक्कीस वर्ष के युवा साधु थे। वह लड़का प्रतिदिन उपासना करने आता और दिन में जो कुछ स्कूल में पढ़ता, वह रात्रि के समय जयाचार्य को सुना देता। वे दूसरे ही दिन उन सुने हुए व्याकरण सूत्रों को वृत्ति सहित कंठस्थ कर लेते और उसकी साधनिका (शब्दसिद्धि की प्रक्रिया) को राजस्थानी भाषा में पद्य-बद्ध करके लिख लेते। यह ग्रन्थ 'पंच संधि की जोड़' के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें २०१ दोहे हैं। इसी प्रकार सारस्वत चन्द्रिका का आख्यात प्रकरण भी 'आख्यात री जोड़' के नाम से निर्मित हुआ है।

साधनिका—यह गद्य कृति है। इसका ग्रन्थमान १८०० पद्य परिमाण है। इसमें सारस्वत चन्द्रिका के कुछ स्थलों की ससूत्र सिद्धि की गई है।

इस प्रकार श्रीमज्जयाचार्य ने व्याकरण को सबके लिए सरल-सुबोध बनाने के लिए राजस्थानी गद्य-पद्य में उसका रूपान्तरण किया।

---

१. तेरापंथ का इतिहास, पृ० २५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नयचक्र री जोड—न्याय अपने आप में एक कठिन विषय है। हर एक व्यक्ति इसमें सुगमता से प्रवेश नहीं पा सकता। श्रीमज्जयाचार्य ने देवचन्द्रसूरि द्वारा रचित 'नयचक' का राजस्थानी में पद्यमय अनुवाद किया। इसमें १४४ दोहे, २० सोरठे, १८ छंदों में ७१८ गाथाएँ हैं। साथ-साथ आपने इस पर १३५ वार्तिकाएँ लिखी हैं। ये सब गद्य में हैं। इनका ग्रन्थमान ८७८ पद्य परिमाण है।[1] इतने कठिन विषय को इस प्रकार राजस्थानी में प्रस्तुत करना अपने आप में महत्त्वपूर्ण है।

भिक्खु दृष्टान्त—तेरापंथ का प्रादुर्भाव हुए सौ वर्ष बीत गये थे। अब तक आचार्य भिक्षु के संस्मरण या घटनाओं का संकलन नहीं हुआ था। श्रुतानुश्रुत की परम्परा से वे एक दूसरे तक पहुँच रहे थे। श्रीमज्जयाचार्य युवाचार्य बन गये थे। उन्होंने सोचा—स्वामीजी की घटनाओं का संकलन किया जाए। उस समय मुनि हेमराजजी, जिन्होंने स्वामीजी को अत्यन्त निकटता से देखा था, विद्यमान थे। जयाचार्य ने उनसे निवेदन किया। उन्होंने संस्मरण सुनाये। जयाचार्य ने उन्हें संकलित किया और 'भिक्खु दृष्टान्त' ग्रन्थ तैयार हो गया। इसमें ३१२ संस्मरण संकलित हैं। कृति के अन्त में चार दोहे हैं। इस ग्रन्थ की संपूर्ति संवत् १९०३ कार्तिक शुक्ला १३ रविवार के दिन नाथद्वारा (मेवाड़) में हुई।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन वि सं० २०१८ तेरापंथ द्विशताब्दी के अवसर पर हुआ था। जनता ने इसका अपूर्व स्वागत किया।

संस्मरण संकलन की विधा को प्रारम्भ कर जयाचार्य ने अपनी सूझ-बूझ और इतिहास-रक्षण की प्रवृत्ति को उजागर किया है। इस ग्रन्थ की विद्वानों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

सुप्रसिद्ध साहित्यकार डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने पुस्तक को पढ़कर लिखा है—

"स्वामीजी (आचार्य भिक्षु) के जीवन से सम्बन्ध होने के कारण इन प्रसंगों में जीवन-निर्माण की अतुल विधि का संचय होना तो स्वाभाविक ही था, किन्तु शैली की सरसता और रोचकता के कारण ये इतने सुपाठ्य और हृदयग्राही बन गये हैं कि इनमें जीवन कथा का-सा आनन्द आता है।

"इस प्रकार के विचारोत्तेजक एवं गम्भीर आदर्शों से ओत-प्रोत संग्रह का हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशन हो जाए तो लाभप्रद होगा। मैंने इतने सरस अपने प्रसंगों में इतनी सरस शैली में लिखी जीवन-निर्माण में सहायक दूसरी पुस्तक नहीं देखी। न तो इसमें दार्शनिक उलझन है और न बनावटी भाषा या अभिव्यक्ति का झंझट। इसमें सीधी-सादी सरल भाषा में गहन गुत्थियों को सुलझाया गया है।"

डा० रघुवीरशरण, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्० ने लिखा है—"इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्त्व भी है। भाषा की दृष्टि से तत्कालीन राजस्थानी का नमूना प्रस्तुत है। अतः भाषा विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए (यह पुस्तक) विशेष अध्ययन का विषय बन सकती है।"

इस प्रकार भिक्खु दृष्टान्त संस्मरणात्मक राजस्थानी गद्य साहित्य का उत्कृष्ट ग्रन्थ माना जा सकता है। इसके कुछ प्रसंग इस प्रकार हैं—

(क) 'भीखणजी स्वामी देसूरी जातां घांणेरावनां महाजन मिल्या। पूछ्यो—थांरो नाम कांइ? स्वामीजी बोल्या—म्हारो नाम भीखन। जद ते बोल्या—भीखण तेरापंथी ते तुम्हें? जद स्वामीजी कह्यो—हां, उवेहीज। जद ते क्रोधकर बोल्या—थांरो मूंहड़ो दीठा नरक जाय। तिवारे स्वामीजी कह्यो—थांरो मूंहड़ो दीठा? जद त्यां कह्यो—म्हांरो मूंहड़ो दीठा देवलोक नै मोक्ष जाय। जद स्वामीजी कह्यो—म्हें तो यूं न कहां—मूंहडो दीठां स्वर्ग नरक जाय पिण थांरी कहिणी रे लेखै थांरो मूंहडो तो म्हैं दीठो सो मोक्ष ने देवलोक तो म्हैं जास्यां। अने म्हांरो मूंहडो थें दीठो सो थांरी कहिणी रे लेख थांरे पानें नरक ईज पडी।' —दृष्टान्त १५

१. जयाचार्य की कृतियाँ : एक परिचय, पृ० ३३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(ख) 'तिण पींपार में एक गैवीराम चारण भगत थयो। ते लोकां में पूजावै। भगतां ने लापसी जीमावै। तिणने लोकां सीखायो—तूं भगतां ने लापसी जीमावै तिण में भाखणजी पाप कहै। जद ते गेवीराम घोटो हाथ में ले गुघरा धमकावतो स्वामीजी कनें आयो। कहै हे भीखण बाबा! हूँ भगतांने लापसी जीमाऊं सो कांइ हुवै? स्वामीजी बोल्या—लापसी में जैसो गुल घाले जैसी मीठी हुवे। इम सुणाने घणो राजी हुवो। नाचवा लागो। भीखण बाबै भलो जबाव दीधो। लोके बोल्या—भीखणजी पहिलां उत्तर जाणै घड़इज राख्यो हुंतो।' —दृष्टान्त २०

(ग) 'घर में छतां कंटालिया में कोई रो गहणो चोर ले गयो। जद बोर नदी सूं आंधा कुम्हार नें बोलायो। कुम्हार रे डील में देवता आवतो तिणसूं तेहने गहणो बतावा बुलायो। कुम्हार स्वामीजी ने पूछ्यो—भीखणजी अठै किण रो भर्म धरै। जद स्वामीजी इण रो ठागो उघाड़ करवा कह्यो—भर्म तो मजन्यां रो धरै है। हिवै रात्रि आंधै कुम्हार देवता डील अणायो। घणा लोक देखतां हाका करै। न्हाखदे रे न्हाखदे रे। जद लोक बोल्या—नाम बतावो। जद बोल्यो—ओ-ओ-ओ-मजन्यो रे मजन्यो गहणो मजन्ये लियो। जद अतीत घोटो लेइ ने उठ्यो। मजन्यो तो म्हारा बकरा रो नाम है, म्हारै बकरे रै माथै चोरी देवो। जद लोकां ठागो जाण्यों। स्वामीजी लोकां नें कह्यो—थे सुझाता तो गहणो गमायो अनै आंधा कानां सूं कढावो सो गहणो कठासूं आसी?—दृष्टान्त १०६

हाजरी—इसका शाब्दिक अर्थ है—उपस्थिति। श्रीमज्जयाचार्य ने आचार्य भिक्षु द्वारा रचित मर्यादाओं के आधार पर २८ हाजरियाँ बनायीं। इनमें भिन्न-भिन्न मर्यादाओं का विशेष विवेचन कर उनकी उपयोगिता पर बल दिया गया है। प्रतिदिन एक हाजरी के अनुपात से प्रति मास २८ हाजरियों का वाचन वि० १९१० पौष कृष्णा नवमी रावलियाँ से प्रारम्भ किया। इनमें गण की अखण्डता के सूत्र कौन-कौन-से हैं? गण और गणी का क्या सम्बन्ध है? गण से बहिर्भूत या बहिष्कृत व्यक्ति के प्रति गण के सदस्यों का क्या कर्त्तव्य है? गण और गणी के प्रति समर्पित होने से क्या लाभ है? आदि-आदि विषयों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

मर्यादाओं और परम्पराओं की स्मृति कराने के लिए इन हाजरियों का अमूल्य योगदान है। हाजरी की इस स्वतन्त्र विधा से श्रीमज्जयाचार्य ने मर्यादाओं को दृढ़ आधार प्रदान किया और गण के सदस्यों को उन मर्यादाओं के पालन में कटिबद्ध किया।

ये सब हाजरियाँ राजस्थानी गद्य में हैं और इनका ग्रन्थमान लगभग ३३०० पद्य परिमाण है।

कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

१. उत्तम जीव हुवै ते अवनीतरी टालोकर री निंदकरी वेमुखरी वेपतारी कलहगारा री संगत न करै करयां समकित चोखी न रहे।

२. आचार गोचर से सावचेत रहिणो। भीखनजी स्वामी रा लिखित ऊपर दृष्टि तीखी राखणी। पासत्था, उसन्नां, कुसीलिया, अपछंदा, टालोकर नी संगति न करणी। कर्म जोगे टोला थी टलै, कटणाई में चालणी नहीं आवै, आहारादिक रो लोलपी घणो अथवा चौकड़ी रे वस थइ आग्या पालणी आपरी छांदो रूंधणो– ए दोरो जद वक्रबुद्धि होइ गण बारै नीकलै।

३. मुँहढे तो मीठौ बोलै। गुरु रा गुण गावै। अनै छानै-छानै दगाबाजी करै। इसड़ा अवनीत, दुष्ट, अजोग, प्रत्यनीक, मुखअरी नै भगवान कुह्या कानां री कुत्ती री, भूंड सूरा री उपमा दीधी है।

वार्तिक—इसका अर्थ है—व्याख्या। व्याख्या पद्यात्मक होती है और गद्यात्मक भी। श्रीमज्जयाचार्य ने अनेक आगमों तथा इतर ग्रन्थों पर पद्यात्मक व्याख्याएं लिखीं। किन्तु व्याख्या में जो भी विषय दुरूह ज्ञात हुआ, उस पर आपने वार्तिक लिखे। ये गद्य में है।

आपने भगवती जैसे तात्त्विक जैन आगम को राजस्थानी पद्य में बाँधा और स्थान-स्थान पर राजस्थानी गद्य में वार्तिकाएँ लिखीं। आज की भाषा में हम उन्हें 'टिप्पण' (Notes) कह सकते हैं। इन वार्तिकाओं की संख्या ११९० है। इनका अनुष्टुप् ग्रन्थमान ७५०० है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र का भी आपने राजस्थानी भाषा में पद्यानुवाद किया है। स्थान-स्थान पर विशेष वार्तिक लिखे। उनकी संख्या दो सौ से अधिक है। उनका ग्रन्थमान है १५०० अनुष्टुप् श्लोक परिमाण।

टब्बा—राजस्थानी भाषा में की गई आगम व्याख्या को 'टब्बा' कहा जाता है। इसका संस्कृत रूप है—'स्तबक'। विक्रम की अठारहवीं शती में पार्श्वचन्द्रसूरि तथा स्थानकवासी परम्परा के धर्मसी मुनि ने गुजराती-राजस्थानी मिश्रित भाषा में आगमों पर स्तबक जिखे। विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी में आचार्य भिक्षु ने आगमों के सैंकड़ों दुरूह स्थलों पर प्रकीर्ण व्याख्याएँ लिखीं।[1] इसी शृंखला में श्रीमज्जयाचार्य ने आचार चूलापर टब्बा लिखा। इसका ग्रन्थमान ७४०७ अनुष्टुप् श्लोक परिमाण है। इसकी पूर्ति संवत् १९१९ फाल्गुन शुक्ला १२, पुष्य नक्षत्र में हुई।

इस व्याख्या की रचना में श्रीमज्जयाचार्य ने श्री मत्पायचंद सूरि कृत संक्षिप्त टब्बे तथा शीलांकाचार्य कृत टीका का तथा अन्यान्य आगमों का सहारा लिया था। आपने अन्त में लिखा—

'श्रीभिक्षु—भारीमालजी—ऋषिराय प्रसाद करी ने चतुर्थ पट्टधारी जयाचार्य ए आचारांग नो टब्बो कियो ते पायचंद कृत टब्बो तथा शीलांकाचार्य कृत टीका देखी अनेक सूत्र नो न्याय अवलोकी मिलतो अर्थ जाणी टब्बो कियो।'

टहुका—श्रीमज्जयाचार्य ने साधु-साध्वियों में भोजन के संविभाग की व्यवस्था की। संविभाग अपने आप में सर्वोत्तम विधि है। किन्तु उसका अभ्यास न हो तब वह स्वाभाविक नहीं लगती। श्रीमज्जयाचार्य ने संविभाग का संस्कार डालने के लिए एक मार्ग निकाला। भोजन के समय सब साधु पंक्ति में बैठ जाते और एक साधु जयाचार्य द्वारा लिखित टहुके का वाचन करता। वह बहुत ही सरस गद्य में लिखा हुआ है।

सिद्धान्तसार—श्रीमज्जयाचार्य ने आचार्य भिक्षु के ग्रन्थों पर 'सिद्धान्तसार' बनाए। इनको हम आधुनिक भाषा में तुलनात्मक अध्ययन कह सकते हैं। इन ग्रन्थों में आचार्य भिक्षु के मन्तव्यों को आगमों के आधार पर पुष्ट किया गया है। ये सारे राजस्थानी गद्य में रचे गए हैं। वे किस ग्रन्थ के विषय में हैं और उनका ग्रन्थमान क्या है—यह संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

		ग्रन्थमान
१. नव पदार्थ की चौपी पर	(दीर्घ सिद्धान्तसार)	४८७५
२. बारै व्रत री चौपी पर	,,	१४३५
३. कालवादी री चौपी पर	,,	२८५५
४. पर्यायवादी री चौपी पर	,,	३४८९
५. मर्यादावादी री चौपी पर	,,	८३०
६. टीकम डोसी री चौपी पर	,,	२११५
७. निक्षेपाँ री चौपी पर	,,	२५१५
८ मिथ्यात्वी री करणी पर	,,	१४५०
९. एकल री चौपी पर	,,	६२५
१०. जिज्ञासा पर	,,	१८१४
११. पोतियाबंध री चौपी पर	,,	७१०
१२. विनीत अविनीत री चौपी पर	,,	२०८०
१३. अनुकंपा री चौपी पर	,,	३५०५

१. मुनि नथमल—जैन दर्शन : मनन और मीमांसा, पृ० ९१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. व्रताव्रत री चौपी पर	(दीर्घ सिद्धान्तसार)	४७९५
१५. श्रद्धा री चौपी पर	,,	४४१५
१६. आचार री चौपी पर	,,	५३७५
१७. आचार री चौपी पर	(लघु सिद्धान्तसार)	१६४०
१८. जिज्ञासा री चौपी पर	,	१०७०
१९. मिथ्यात्वी री करणी पर	,,	३८५
२०. श्रद्धा री चौपी पर	,,	१२०५
२१. व्रताव्रत री चौपी पर	,	१४६०
२२. विनीत अविनीत री चौपी पर	,,	८९०
२३. एकल री चौपी पर	,,	२६५[1]

इस लघु निबन्ध में श्रीमज्जयाचार्य के समस्त गद्य साहित्य का परिचय प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है। वे राजस्थान के साहित्याकाश में एक देदीप्यमान अंशुमाली की तरह उदित हुए और अपनी सहस्रों किरणों से राजस्थानी साहित्य को आलोकित किया। ऐसी बहुत कम विधाएँ हैं, जिन पर उनकी लेखनी न चली हो। भगवान् महावीर और आचार्य भिक्षु के प्रति उनके आत्मसमर्पण ने उन्हें एक महान् तत्त्ववेत्ता स्तुतिकार बनाया तो अपनी आत्मा के प्रति पूर्णभावेन अर्पित होने की भावना ने एक महान् योगी। वे केवल शुष्क तर्कवादी ही नहीं, तथ्य की गहराई तक पहुँचने वाले सत्य-शोधक थे। अब मैं उनकी समस्त गद्य कृतियों की एक तालिका प्रस्तुत कर रहा हूँ—

ग्रन्थ	ग्रन्थमान	ग्रन्थ	ग्रन्थमान
१. भ्रमविध्वंसन	१००७५	१५. छोटी मर्यादा	२२८
२. सन्देह विषौषधि	७१००	१६. परम्परा का बोल (दो खण्ड)	१३४०
३. जिनाज्ञामुखमंडन	१३७८	१७. साधनिका	१८००
४. कुमतिविहंडन	१२४२	१८. भिक्खु दृष्टान्त	२४२६
५. प्रश्नोत्तर सार्धशतक	१५७८	१९. श्रावक दृष्टान्त	३९३
६. चरचा रत्नमाला (अपूर्ण)	१४६१	२०. हेम दृष्टान्त	३८१
७. भिक्खु पृच्छा	२६८	२१. आचारचूला (टब्बा)	७४०७
८. ध्यान (बड़ा)	१५०	२२. आगमाधिकार	१४५
९. ध्यान (छोटा)	३७	२३. निशीथ की हुण्डी (विषयानुक्रम)	४२५
१०. बृहत्प्रश्नोत्तर तत्त्वबोध	१२४८	२४. बृहत्कल्प की हुण्डी	२२५
११. झीणी चरचा रा बोल	२६९	२५. व्यवहार की हुण्डी	३२५
१२. परचूनी बोल	१४३०	२६. भगवती की संक्षिप्त हुण्डी	४२५
१३. गण विशुद्धिकरण हाजरी	३२८७	२७. उपदेश रत्न कथा कोश	६६५६६
१४. बड़ी मर्यादा	२५४	२८. प्रकीर्ण पत्र	१४७८

इस प्रकार श्रीमज्जयाचार्य ने लगभग सवा लाख पद्य परिमाण का राजस्थानी गद्य साहित्य लिखा जो कि विभिन्न विषयों की छूता हुआ, पाठक के मन पर अमिट छाप छोड़ देता है।

तेरापंथ के अन्यान्य आचार्यों तथा मुनियों ने भी राजस्थानी साहित्य के भण्डार को भरा है। परन्तु उनकी कृतियाँ प्रायः राजस्थानी पद्यों में हैं, अतः उनका विवरण यहाँ अपेक्षित नहीं है।

---

१ जयाचार्य की कृतियाँ : एक परिचय, पृ० ४०, ४१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेरापंथ भण्डार में आचार्यों द्वारा साधु-साध्वियों के लिए लिखे गये पत्रों का भी अच्छा संकलन है। यह पत्र-लेखन आचार्य भिक्षु से लेकर आज तक चलता आ रहा है। इन पत्रों में शासन की सारणा-वारणा से सम्बन्धित समाचार तथा आचार्य के आदेश-निर्देश होते हैं। किसी साधु-साध्वी का सिंघाड़ा (ग्रुप) दूर देश में भ्रमण कर रहा है। आचार्य उसको स्थितिवश विशेष निर्देश देना चाहते हैं, तो वे साधु-साध्वी के माध्यम से उसको पत्र द्वारा सूचित करते हैं। इन पत्रों के माध्यम से विविध प्रकार की जानकारी दी जाती है। मैं समझता हूँ, ये पत्र हमारे संघ की अमूल्य निधि हैं, जिनका मूल्य वर्तमान में कम परन्तु भविष्य में अधिक होगा।

साधु-साध्वी भी अपनी भावना, भक्ति, उत्साह और समर्पण की बात पत्रों द्वारा आचार्य तक पहुँचाते हैं।

प्रायः ये पत्र राजस्थानी भाषा में लिखे गये हैं। कुछेक पत्र हिन्दी में और कुछेक संस्कृत में भी हैं।

तेरापंथ में आठ आचार्य हो चुके हैं। पहले आचार्य श्री भिक्षु और चौथे आचार्य श्रीमज्जयाचार्य के साहित्य का वर्णन पूर्व पृष्ठों में आ चुका है। शेष आचार्यों तथा मुनियों का गद्य साहित्य विशेषतः केवल पत्र-लेखन के रूप में ही मिलता है।

एक बार श्रीमज्जयाचार्य के बड़े भाई मुनिश्री सरूपचन्दजी ने श्रीमज्जाचार्य को पत्र लिखा—

'पूजजी महाराज श्री श्री श्री श्री श्री कृपानिधि गुणजिहाज गुणसमुद्र कृपानिधि गणाधार गणदीपक गणतिलक गणानंदकारक मर्यादाधारक अखल आचार आधारक सूँ ऋष सरूपरी तरफरी श्रीपूजजी महाराज श्रीजीतमलजी स्वामी सूँ सुखसाता पुछवै। १००८ वार गणे मांन सूँ गणे-गणे मान सेती मालम होय। आप बड़ा उत्तम पुरुष हो।···· ···आपरो आधार आपरो सरणो छे। सर्व कारज में आपरी आज्ञा रो आधार छे। मांसु आप उपगार घणो कीधो। भाँति-भाँति रो साज दीधो। ऊणायत किणही बात री राखी नहीं।·····सती सिणगार सिरदांराजी-सूँ ऋष सरूप री गाडी सुखसाता वाँचजो। हेत मिलाप राखो तिण सूँ विशेष राखजो। श्रीजी महाराज रा सरीर रा जतन घणां कीजो। मुरजी पकी आराधजो। भाँति-भाँति कर साता उपजाइजो। थांरै भरोसे नीचीता छाँ। गणपति ने गणसमदाय रा आपरी कांनी री जमाषातर छै।·····सं० १९२० मगसुर बिद ३, खानपुर मधै।'

आचार्य तुलसी

वि० सं० १९९३ में आप बावीस वर्ष की अवस्था में तेरापंथ के नौवें आचार्य बने। आपने आचार्य-काल के इन चालीस वर्षों में विविध प्रकार का साहित्य रचा और काव्यों की शृंखला में अनेक काव्यों का निर्माण किया। आप राजस्थानी के सिद्धहस्त कवि हैं। आपकी प्रायः कृतियाँ राजस्थानी पद्यों में हैं। हिन्दी में आपकी अनेक कृतियाँ आयी हैं। अनेक काव्य भी प्रकाशित हुए हैं। आपने राजस्थानी पद्य में 'कालूयशोविलास' नामक पूज्यपाद कालुगणी की जीवनी लिखी है। यह वर्णन, भाषा और अलंकरण की दृष्टि से संस्कृत महाकाव्यों की पद्धति का राजस्थानीकरण है। काव्य तत्त्वों की दृष्टि से इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है।[1] इसी पद्य शृंखला में 'माणक महिमा'—तेरापंथ के छठे आचार्य श्री माणक गणी का जीवन, 'डालम चरित्त'—तेरापंथ के सातवें आचार्य श्री डालगणी का जीवन, 'मगन चरित्त'—तेरापंथ के मंत्रीश्वर श्री मगनलालजी स्वामी का जीवन—ये तीन जीवनियाँ भी लिखी हैं।

गद्य साहित्य की दृष्टि से आप द्वारा लिखित पत्रों को लिया जा सकता है। उनकी संख्या अनेक सौ है। उन सबका संग्रह हमारे लाडनूं भण्डार में है। उनकी भाषा हिन्दी-संस्कृत मिश्रित राजस्थानी है। अब मैं आचार्य द्वारा अपने शिष्यों को लिखा गया पत्र, शिष्यों द्वारा आचार्य को लिखा गया पत्र तथा मुनि द्वारा अपनी साध्वी माता को लिखा गया पत्र—इन तीनों का संक्षिप्त नमूना उपस्थित कर रहा हूँ—

---

१. मुनि नथमल—जैन धर्म : बीज और बरगद, पृ० ४०.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) आचार्यश्री द्वारा लिखा गया पत्र

'लाडांजी अस्वस्थ है आ तो ठीक है, पर बी वेदनां में जकी सहनशीलता रो बै परिचय दियो है बी कै वास्ते मनै बहुत प्रसन्नता है। मैं ई वास्ते ही तो 'सहिष्णुता री प्रतिमूर्ति' ओ शब्द बांकै नाम कै साथ जोड्यो है। इस्यूं अठे चार तीर्थ में प्रसन्नता हुई है और मैं समझूं हूं बै भविष्य में भी इसी सहनशीलता रो परिचय देसी।

ओ मनै विश्वास है अठै का जो शब्द हे बारै वास्ते बहुत बड़ी दवा को काम करै है और ई विश्वास स्यूं ही मैं बार-बार कुछ केयो है, कुछ लिख्यो है, कुछ विचार रख्यो है और जिती बार ही बै विचार बठै पहुंच्या है बांस्यू बाने बल मिल्यो है और दर्शण हुणा तो हाथ की बात कोनी। आयुस्य बल होसी तो दर्शण होसी, पण दर्शण की इच्छा स्यूं भी अधिक बांरी जकी दृढ़ता है बा सारै नै बल दे रही है।"

—आचार्य तुलसी

(२) शिष्य द्वारा आचार्य को लिखा गया पत्र

आचार्य श्री राजस्थान से दूर दक्षिण यात्रा पर थे। साध्वीश्री लाडांजी अत्यन्त अस्वस्थ अवस्था में बीदासर (राजस्थान) में स्थित थीं। एक बार आपने गुरुदेव को लिखा—

'म्हारे ऊपर गुरुदेव री पूर्ण कृपा तथा माइतपणो है। यात्रा री ईं व्यस्तता रै मांय नै भी म्हारै जिसी चरण-रज ने बार-बार याद करावै तथा बठै विराज्या ही मनै बडो पोख दिरावै है।..... म्हारो मन पूर्ण समाधिस्त तथा प्रसन्न है। मन एकदम मजबूत है। सरीर री लेशमात्र भी चिन्ता कोनी। आपनै म्हारै प्रति जको विश्वास है वीरै अनुरूप ही काम हुवै दीस्यो ही परिचय द्यूं जद ही म्हांरी कृतार्थता है। म्हैं पल-पल आ ही कामना करूं हूं कै म्हारी आत्मशक्ति और मनोबल दिन-दिन बढ़ता रेवै। ईं अवसर पर मांजी महाराज री सेवा मिली है, ओ म्हारो परम सौभाग्य है।

—साध्वी लाड

(३) सेवाभावी मुनि चंपक द्वारा मातुश्री साध्वी बदनांजी को लिखा गया पत्र

'महासक्ति मां !

सादर चरण वन्दना।.....अठें नित नूं आं आगडा-ठाट लाग रह्या है।..... आपरै सुखसाता रा समाचार सुणकर जाणै एकर स्यां तो बीदासर ही पूग गया, इसे लाग्यो। .....हांसी में धूंवर तो लारो ही कोनी छोड्यो। ११ दिन तांई लगातार एग सरीखी धूंवर पडी। कदेई-कदेई तो दिन मैं दो-दौ बज्यां तांई धूंवर खिडती।.....मांजी ! म्हैं तो ईसी धूंवर ६० वर्षां में ही कदेई कोनी देखी।

.....मैं स माजी धाको सोक धिकाउं हूं। कदेइ एक मजल लारै तो कदेई दो मजल आगै। जियां तियां पूगू हूं।.....गोडा दूखै है। सरीर में सोजो रेवै है। दरद-फरद देखतां तो भलाइं आज ही बैठ ज्यावो, पण देखूं हूं अबकै-अबकै री दिल्ली यात्रा तो आचार्यश्री सागै-सागै कर ल्यूं। आगै स म्हारै अन्तराय टूटी हुसी तो फेर हुसी।

आपरो

सेवाभावी चंपक

इस प्रकार तेरापंथ के साधु-साध्वियों की कुछ न कुछ राजस्थानी कृति मिल जाएगी। प्रकाशित कृतियाँ बहुत कम हैं। राजस्थानी साहित्य निर्माता के रूप में इन मुनियों के नाम उल्लेखनीय हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. मुनि वेणीरामजी
२. मुनि हेमराजजी
३. मुनि जीवराजजी
४. मुनि चांदमलजी
५. मुनि चौथमलजी
६. मुनि धनराजजी
७. मुनि चन्दनमलजी
८. मुनि सोहनलालजी[1]

मुनि नथमल

मुनि नथमलजी हिन्दी, संस्कृत और प्राकृत के मनीषी विद्वान् हैं। आपने इन भाषाओं में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं और लगभग ५-७ दर्जन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। आपने राजस्थानी में लिखा, पर वह बहुत अल्प है। आप द्वारा लिखित दो-एक गद्य मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ, जिनमें इतनी तीखी अभिव्यंजना है कि वह पाठक के मन पर सीधी चोट किये बिना नहीं रहती।

(क) दुर्जन व्यक्ति मिले हुए दिलों को तोड़कर सबके मन में संशय का बीज बो देता है। जब सब बिछुड़ जाते हैं, तब उसका मन आनन्दित हो जाता है। इससे उसका अपना कोई स्वार्थ नहीं भी सधता फिर भी वह दूसरों को कष्ट देकर मुदित होता है। इन तथ्यों की अभिव्यंजना निम्नोक्त रूपक में कितने मार्मिक ढंग से हुई है, वह द्रष्टव्य है—

.....एक दुरजण आदमी बाग में गयो—सिज्यारी सी बात ही हाल सूरज आथम्यों कोनी हो। कंवल रा फुल खिल रया हा—वां पर भंवरा नाच रया हा—सूरज री किरण्यां पड रही ही। वीं ने (दुरजन ने) आ बात आछी कोनी लागी। वो सूरज ने बोल्यो—सूरज ! तूं तो बण्यो बणायो मुरख है। देख—कंवल थारै पर रीसकर लाल मुंडो कर राख्यो है। तो ही तूं वी रै कनै जावै।

कंवल ने कह्यो—सूरज थां स्यूं उपरलो हेज दिखावै और मायनें स्यूं के करै हैं तूँ कोनी जाणै। देख—थारी जड़ काटै—पाणी और कादो सुखावै।

भंवरे ने इसी घूंट पाई—रै भंवरा ! ओ कंवल थारै वास्ते कोनी खिल्यो है, सूरज रे वास्ते खिल्यो है—तू आ बात मत भूल ज्याई।

दिन ढलतो हो—तीनों रा मन फाट्ग्या। तीनूं न्यारा-न्यारा होग्या। सूरज जाकर पाणी में डूबग्यो। कंवल आपरो मूंढो लुको लियो। भंवरो कठेई दूर भाजग्यो। वीं रो कालजो ठरग्यो। वो तो सेर घी पीयोडो सो होग्यो।

अब दिन चढ़तो हो। ईं वगत वीं खोटै आदमी री बात कुण मानै।.....

(ख) गुण के साथ दोष और फूल के साथ कांटा होता ही है। यह नैसर्गिक है। ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जिसमें गुण ही गुण हों, दोष न हों, और संसार में ऐसा भी कुछ नहीं है जिसमें केवल दोष ही हों, गुण न हों। गुण और दोष साथ-साथ चलते हैं—

(१) दिल तो है पण दर्द कोनी। दर्द कोनी जदि दिल है—नहीं तो आज तांइ रे तो इ कोनी, कदेई टूट जातो।.....

(२) मर्द तो है पण रीस कोनी। रीस कोनी जदि मर्द है—नहीं तो आज तांइ रे तो इ कोनी, पेल्ही मरज्यातो।.....

(३) बडो सीधो है पण कनै सत्ता कोनी। सत्ता कोनि जदि सीदो है—नहीं तो आज तांइ रे तोइ कोनी—पेल्ही सीदाई पूरी हो ज्याती।.....

(४) बडो सादो है पण कनै धन कोनी। धन कोनी जदि सादो है—नहीं तो आज तां रे तोइ कोनी—सादगी कदेई टूट ज्याती।.....

१. जैन धर्म : बीज और बरगद, पृ० ४१.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(५) बडो नकटो है, केणो कोनी मानै। केणो कोनी माने जदि नकटो है—नहीं तो आज ताइं रे तो इ कोनी—पेल्ही नास्यां में नथ घल ज्याती।..... ...

(६) बडो सचवादो है पण लूखो है। लूखो है जदि सचवादो है—नहीं तो आज तांइ रे तो इ कोनी—पेल्ही झूठ बोल २ पांचू आंगल्यां घी में कर लेतो।.....

(७) बडो धीरो है, बार २ फिरै पण घूंस कोनी देवै। घूंस कोनी देवै जदि बार २ फिरै। नहीं तो आज तांइ फिरतो इ कोनी। पेल्ही काम बण ज्यातो।

(८) बडो स्याणो है, पण वई-खाता झूठा राखै। झूठा राखै जदि स्याणो है। नहीं तो आज तांइ रे तो इ कोनी। इनकमटेक्स अफसर पेल्ही बावलो बणा देता।.....

(९) बडो भागवान है, पण पढ्योडो कोनी। पढ्योडो कोनी जदि भगवान है। नहीं तो आज तांइ रे तो इ कोनी। नोकरी री अरज्यां लियां फिरतो।

(१०) बडो मस्त है, पण घर-बार री चिन्ता कोनी। चिन्ता कोनी जदि मस्त है। नहीं तो आज तांइ रे तो इ कोनी। मस्ताई कदेई सूक ज्याती।.....

(११) बडो समझदार है, पण कोई नै कैवै—कैवावै कोनी। कैवै-कैवावै कोनी जदि समझदार है। नहीं तो आज तांइ रे तो इ कोनी। पेल्ही समझदारी पूरी हो ज्याती।.....

(१२) टाबर बडो फुटरो है, पण टीकी काली है। टीकी काली है जदि फुटरो है। नहीं तो आज तांइ रे तो इ कोनी। पेल्ही टमकार लाग ज्याती।.....

(१३) बडो विनीत है, पण भोलो है। भोलो है जदि विनीत है। नहीं तो आज तांइ रे तो इ कोनी। पेल्ही कान कतरण लाग ज्यातो।.....

(१४) सागै रेण ने तरसतो रेवै है। सागै रह्यो कोनी जदि तरसै है। नहीं तो तरसतो इ कोनी। कदकोई दूर भाग ज्यातो।.....

स्फुट गद्य

मारवार नौ-कोटी मारवार है। मोटी रात रा मोटा तडका। अठै आंध्यां सूझत्यां स्यूं ही जोर स्यूं चालै। ई जगत में आंख और पांख दो ही चीज हुवै। आंख नहीं हुवै तो पांख हुयां के हुवै? और केहुवै? दूजां नै फोडा घालै।

समंदर स्यूं पाणी उठ्यो। मै बण बरस्यो। तलाव भरग्या, तलायां भरगी। खाडा भरग्या, नाड्यां भरगी। वे सब सवार्थी हा। जितरो चाइजो हो वित्तो ले लियो, बाकी रै ने दियो धरम-धक्को। पाणी रो पूर आगै सरक्यो। कठेई ठोड कोनी मिली। जद वो पूर रोतो-रोतो समंदर कने गयो। वो वीरै पाणी रो कै करे, आगेइ भरयो पड्यो। तौ भी वींने आपरे खोले में ले आंसूं पूंछ्या।

नेठ आपरो आपरो हुवे ने परायो परायो।

उपसंहार

तेरापंथ संघ के राजस्थानी गद्य साहित्य का मैंने एक संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया है। इस संघ के राजस्थानी साहित्य पर अभी पर्याप्त कार्य नहीं हुआ है। अभी दो दशक पूर्व तक यह साहित्य प्रकाशित भी नहीं था। अतः विद्वानों के लिए उसकी उपलब्धि दुर्लभ थी। वि० सं० २०१८ में तेरापंथ का द्विशताब्दी समारोह मनाया गया। उस अवसर पर तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु का पद्य साहित्य 'भिक्ष ग्रन्थ रत्नाकर', भाग १ भाग २ के रूप में प्रकाशित हुआ। उसका ग्रन्थमान लगभग ३५ हजार पद्य परिमाण है। किन्तु श्रीमज्जयाचार्य का विशाल राजस्थानी गद्य-पद्य साहित्य अभी भी अप्रकाशित है। उसके प्रकाशित होने पर मैं मानता हूँ कि राजस्थानी साहित्य की श्रीवृद्धि होगी, साथ-साथ अनेक विद्वान् इस ओर आकृष्ट होकर अपनी राजस्थानी साहित्यिक कृतियों पर अहमहमिकया कार्य करने के लिए उद्यत होंगे। □

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org